सुधांशु उपाध्याय

करें कोशिश

हर लहर के साथ
थोड़ा कांप जाता पुल
दूर रेतीले किनारे
हो रहे व्याकुल,

अनमनापन और गहरे
में उतर कर बोलता है
हम नहीं चाहें मगर वह
खिड़कियों को खोलता है
और फिर इन
खिड़कियों के साथ
हम भी जा रहे हैं खुल,

अघट घटता हुआ हर रोज
जारी है सफर फिर भी
हमें देता विदाई, बांध
लेता है शहर फिर भी
जेब से बाहर
निकालें हाथ देखें
खुशबुओं में रहा है घुल,

छलछलाती रोशनी में
प्यास आकर सो रही
तोड़कर भीतर अंधेरा
रोज झरने बो रही
हैं परिंदो के लिए
आकाश ढेरों
करें कोशिश एक मिलजुल।

कटते हैं धान से

पानी में रह कर भी
कटते हैं धान से,
बस–अड्डे पास किसी
ऊंघती दुकान से

थके हुए पावों पर
चेहरे हैं भाग रहे
कंधों पर झूल रहे
हाथों में जाग रहे
अलसाई आंखों में
कांपती कमान से

भारी है बोझ और
सांसें हैं कांप रही
जूते के भीतर क्या
सड़क है भांप रहीं
हवा जोड़ देती है
सूरज को कान से

चलने को चलते हैं
भीड़ भरे साथ यहां
फिर भी तो रहते हैं
सूने फुटपाथ यहां
कब तक बतियाते मुंह
चूने से, पान से

यादों से भीग रही
रोटी है, आंखें हैं
जिद्दी आकाश लिये
छोटी–सी पाखें हैं
उचटा मन जूझ रहा
खण्डित पहचान से।

सम्पर्क–
ए–1, पत्रद्वार कालोनी
इलाहाबाद–211001
मो.–0532–2622652